

भक्तामर : काव्य कलश

(डॉ. अखिल बंसल कृत)

जो मुकुटों में लगी मणी, देवों को कांतिमान करती।
पद पंकज आभा से शोभित, जन-जन के संकट हरती॥
पतित बहुत पावन हैं होते, भव सागर तिर जाते हैं।
जिन चरणों में श्रद्धा रखते, क्षण में पाप पलाते हैं॥ १ ॥

द्वादशांग वाणी के ज्ञाता, प्रखर बुद्धि के धारी वो।
इन्द्रों के द्वारा हैं पूजित, तीन लोक हितकारी जो॥
प्रथम तीर्थकर आदिनाथ का, मिलकर सब गुणगान करें।
धरम धुरंधर करुणासागर, के चरणों में ध्यान धरें॥ २ ॥

देवों द्वारा आप पूज्य हो, सारे जग के नायक हो।
करता हूँ सर्वस्व समर्पण, तुम प्रभु सुख के दायक हो॥
चंद्र बिम्ब ज्यों जल में झलकत, बालक पकड़े बिना विचार।
मैं तो अल्पबुद्धि हूँ स्वामी, लाज छोड़ आया प्रभु द्वार॥ ३ ॥

मैं हूँ अल्पबुद्धि का धारक, सुर-गुरु सम न करूँ बखान।
चंद्रकांति सम उज्ज्वल हो तुम, कुन्दधवल हो महिमावान॥
प्रलय काल तूफानी तेवर, मगरमच्छ होते गतिमान।
कैसे बच सकता है वह भी, जो भुज से बलवंत महान॥ ४ ॥

मुनिजन के आराध्य देव हो, गुण अनंत के हो भण्डार।
मैं तो शक्तिहीन हूँ स्वामी, भक्तिवश आया प्रभुद्वार॥
ज्यों अपने मृगछौना खातिर, विसरजात हिरणी औकात।
भिड़ जाती वह सिंहराज से, त्यों जिनवर में भी गुण गात॥ ५ ॥

हूँ अल्पज्ञ शास्त्र का ज्ञाता, हूँसी उड़ावें विद्वद्जन।
पर भक्तिवश दौड़ा आता, खिल जाता है अन्तर्मन॥
जैसे ऋतु बसंत में कोयल, आम्र मंजरी पा गुंजाय।
वैसे ही प्रभु निकट तुम्हारे, रोम-रोम पुलकित हो जाय॥ ६ ॥

जिनवर का जो करें स्तवन, संचित पाप विनश जाते।
पल भर में वह छिन्न-भिन्न हो, स्वयं विलोपित हो जाते॥
'अखिल' लोक में व्याप्त अंधेरा, सूर्य किरण हर लेती है।
भक्तिलीन होने वालों के, कर्मों का क्षय करती है॥७॥

मैं तो हूँ अल्पज्ञ सरीखा, मन भावों को लेकर साथ।
आया हूँ जिनवर के द्वारे, सदा नवाता चरणन माथ॥
कमल पत्र पर जलकण गिरता, मोतीवत दमके दिन रात।
मनोभाव स्तोत्र संजोया, आनंदित क्षण तव सौगात॥८॥

सहस्र-रश्मि स्पर्श करें जब, जलज सरोवर प्रातःकाल।
खिल उठते शतदल प्रफुल्ल हो, भक्तिभाव का फलित विशाल॥
हे जिनदेव! आपकी महिमा, किन शब्दों में गाई जाय।
सुनते हैं जो कथा आपकी, उनके अघ हैं तुरत नशाय॥९॥

तन्मयता से करें स्तुति, जो वे जन पुण्य कमाते हैं।
हे जगदीश्वर! क्या अचरज है, तुम-सम वे बन जाते हैं॥
ऐसे स्वामी लाभ न देवें, जो समृद्ध कहाते हैं।
स्वाश्रित को निज-सम करने में, किंचित् भाव न लाते हैं॥१०॥

जो भी तुम्हें देखता जिनवर, वह अतीव सुख पाता है।
फिर क्या और किसी को देखें, कोई नहीं सुहाता है॥
क्षीर-सिंधु अमृत-पय पीकर, लवण सिंधु न भाता है।
वीतरागता मन को भावे, वहीं चित्त रम जाता है॥११॥

जो थे शुभ परमाणु जगत में, उनसे निर्मित ऋषभ जिनेश।
तुम त्रिभुवन के अतुलनीय प्रभु, मूर्तिमान सौंदर्य दिनेश॥
तुम ही अद्वितीय अवनी पर, नहीं किसी का ऐसा रूप।
शांत रूप पुद्गल परमाणु, संग विचरते हैं तव भूप॥१२॥

नेत्र-रम्य मुखमण्डल सुर-सम, तीनों लोक विजेता हो।
किससे उपमा करें आपकी, भू-मण्डल के नेता हो॥
शशिसमान न कह सकता मैं, युतकलंक दिन में द्युतिहीन।
उसी भांति जो ढाक पाण्डु-सा, मुरझा कर हो जाता छीन॥१३॥

निधि अनंत के स्वामी हो तुम, सभी कलाओं से भरपूर।
स्वाश्रित रहते हैं जो प्राणी, उनको कभी न करते दूर॥
पूर्णचंद्र की विमल प्रभावत्, तव गुण लांघे तीनों लोक।
आप सदृश स्वामी नहीं जग में, शरण पाय विचरें बेरोक॥१४॥

जो विकार भावों को लेकर, आती हैं सुर बालाएँ।
तनिक चित्त भी हर न सकें वे, धधक रही जो ज्वालाएँ॥
प्रचण्ड पवन का वेग तनिक भी, हिला न पाया मेरु शिखर।
फिर इसमें आश्चर्य कहाँ का, खड़े रहे जो आप निडर॥१५॥

आप हो ऐसे अद्भुत दीपक, जो प्रकाश फैलाते हो।
तेल-रहित बिनधूम्र बाति जल, तीनों लोक दिखाते हो॥
वायु-वेग से उखड़े कानन, पर दीपक न बुझ पाया।
स्वपर-प्रकाशक अनुपम था वह, जगत राह जो दिखलाया॥१६॥

भले अस्त हो सांध्य दिवाकर, और ढके भी राहु प्रबल।
परन्तु आप हैं बड़े विलक्षण, रखते हो जो ज्ञान विमल॥
अनंत ऋद्धि से युक्त प्रभाकर, तीन लोक में फैला तेज।
सघन घनों में कहाँ शक्ति वह, जो कर दे तुमको निस्तेज॥१७॥

चन्द्रबिम्ब सम रूप तुम्हारा, मोह महातम हरता है।
दबता राहु न मेघों से पर, जग उजियारा करता है॥
अंचल तम को हरे निशाकर, तुम करते जग का उद्धार।
मुख-सरोज है विश्वप्रकाशक, कांतिरूप तेरा अवतार॥१८॥

अंधकार जब होय निशा का, या रवि-शशि का दिव्य प्रकाश।
तव मुखेन्दु हर लेता तम को, करता उसका सत्यानाश॥
मोह महातम मिट जाता सब, फैले आभा जब चहुंओर।
वन्य शालि के खेत पकें जब, व्यर्थ गगन में घन का शोर॥१९॥

तुम तो सम्यग्ज्ञान-दिवाकर, स्वपर-प्रकाशक महिमावान।
आभा का किंचित् शतांश भी, पा न सके हरि-हर-भगवान॥
अद्भुत कांतिपूर्ण मणिधारक, नैसर्गिक है प्रभा अनंत।
कांच कभी क्या बन सकती है, मणिसमान रविकर द्युतिमंत॥२०॥

अवलोकन मैंने किया आज, थे हरिहर सब मिथ्या भगवन।
पर निरख आपकी सम दृष्टि, मन में पाया संतोष गहन॥
जो वीतरागता की मुद्रा, मेरे मन को अब भाई है।
मुझे कहीं न कोई मिला, प्रभुता मम हृदय समाई है॥२१॥

इस भूमि पर शत सुत जननी, सत् नारी शत-शत है बार।
अनुपम सुत को जनने वाली, महितल पर कोई इक नार॥
सर्व दिशा तारा गण व्यापै, नहीं जगह कोई खाली।
महाप्रतापी पूर्व दिशा ही, दिनकर को जनने वाली॥२२॥

परम पुरुष हो तेजमयी तुम, मोह-तिमिर हरने वाले।
राग-द्वेष मल से निर्मल हो, सम्यक् पथ चलने वाले॥
मुक्तिमार्ग के पथिक तुम्ही हो, नहीं जगत में कोई और।
मृत्युंजय अधिकारी बनने, नहीं मुझे है कोई ठौर॥२३॥

आदि, अचिन्त्य, विभु, योगीश्वर, आदि ब्रह्म कोई कहता।
अक्षय, ईश्वर या अनंत जो, काम विकारों के हरता।
अमल विमल हो ज्ञान स्वरूपी, निर्मलता के हो आगर।
धूमकेतु वत् जगदीश्वर तुम, अनंत गुणों के हो सागर ॥२४॥

सुख-सम्बर्द्धक ज्ञान तुम्हारा, कहता शंकर हो करुणेश।
आद्य प्रवर्तक मुक्तिमार्ग के, तुम ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश॥
जगतपूज्य हितकारी तुम हो, तुम ही तो हो बुद्ध जिनेश।
पुरुषोत्तम तुम हो जगती के, तुमको ही कहते वृषभेश॥२५॥

तीनों लोकों का दुख हरते, अतः आपको नमन करूँ।
निर्मल भूषण हो क्षिति तल के, प्रभुवर तुमको नमन करूँ॥
‘अखिल’ विश्व के तुम परमेश्वर, नाथ आपको नमन करूँ।
भव समुद्र शोषक हो जिनवर, भगवन! तुमको नमन करूँ॥२६॥

सुगुण सिमटकर तुझ में व्यापे, मिला न भू पर कोई थान।
इसमें क्या आश्चर्य किसी को, दुर्गुण आश्रय नहीं जहान॥
स्वप्नों में भी तनिक न आवें, जो अवगुण से करते प्रीत।
सद्गुण जिनमें विद्यमान हैं, सदा मिली है उनको जीत॥२७॥

कंचन जैसा दमके यह तन, श्याम घटाएं हैं घनघोर।
तेजस्वी दिनकर की किरणें, तम को हरती हैं चहुं ओर॥
अशोक निकट तरु विभा विभूषित, विमल प्रभा परिपूर्ण विशाल।
दिव्य रूप सबको प्रिय लगता, रवि-रश्मि वत् फैला जाल॥२८॥

उदयाचल के शैल शिखर पर, करे निशातम का अवसान।
क्वक कांति वत बिम्ब मनोहर, उदित उदय हो महिमावान॥
मणि-मुक्ता से युक्त सिंहासन, स्वयं विराजे हो भगवान।
सूर्यबिम्ब सम आलोकित हो, तभी कहें प्रभु बड़े महान॥२९॥

मेरु-शिखर के मध्य स्वर्ण-तट, अनुपम सुषमा का आगार।
चंद्रकांति सम जल का झरना, झर-झर झरे बहे जलधार॥
श्वेत शुभ्र वत चंवर दुराते, मिलकर करते सब गुणगान।
कंचन-सी काया के धारक, देह आपकी आभावान॥३०॥

मोती की झालर से चमके, चंद्रप्रभा अपने ही आप ।
तीन छत्र मस्तक पर शोभित, पास न आवै सूरज ताप॥
मार्तण्ड की प्रखर रश्मियां, हो जाती हैं तेज विहीन।
मानो आप स्वयं कहते हो, जग में और न कोई प्रवीन॥३१॥

समवशरण की आभा से, जग का विषाद मिट जाता है।
तीनों लोक खुशी से झूमें, गीत सुयश का गाता है॥
तीर्थकर की मधुर स्वरों में, नाद गूँजती है चहुँ ओर।
विजय-दुन्दुभि गूंजे नभ में, उसका कहीं ओर ना छोर॥३२॥

पारिजात मंदार मनोहर, कल्प-विटप के हैं उपवन।
मंद समीरन के झोंकों से, खिल जाता है अन्तर्मन॥
ऐसे दिव्य पुष्प की वर्षा, नभ-मण्डल को महकाती।
श्री-मुख से वचनों को सुनकर, गंध सुवासित फैलाती॥३३॥

भामण्डल का तेजस वर्तुल, अति शोभित कर देता है।
त्रिजग कांति फीकी कर देता, सभी कष्ट हर लेता है॥
कोटि दिवाकर के सम ज्योति, फैला देते प्रबल प्रताप।
शशिमण्डल सी उसकी आभा, तम निष्प्रभ हो अपने आप ॥३४॥

निरक्षरी अनहद वाणी की, महिमा देखी अपरम्पार।
जो भी ग्राह्य करे जीवन में, खुलते स्वर्ग मुक्ति के द्वार॥
सत्यधर्म दिग्दर्श करा दे, अमर तत्त्व का होवे भान।
सुर-नर-साधु हों या पशु जन, सभी करें अपना कल्याण॥३५॥

सुषमा लख भाषित होता है, नख से फूटै दिव्य प्रकाश।
स्वर्ण जलज नव कांति फैले, झिलमिल करता है आकाश॥
जहाँ जहाँ पग विमल पड़े हैं, कनक-कुसुम को देव रचाय।
उन चरणों को छूकर पावन, प्रमुदित मन से महिमा गाय॥३६॥

समवसरण की दिव्य विभूति, केवल जिनवर ने पाई।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, सबने प्रभु महिमा गाई॥
नहीं कुदेवों में सौन्दर्य, कभी किसी ने देखा है।
रवि चमकीला गगनांचल पर, सब ग्रह आभा हरता है॥३७॥

मस्ती में दिखता मतंग जब, गालों से झरती मदधार।
मत्त मधुप-दल मधुरस पीने, मंडरा कर करते गुंजार॥
ऐरावत सम उद्धत होकर, गज आक्रामक हो जाते।
शरण आपकी पाने वाले, किंचित् भी न घबराते॥३८॥

मत्त गजों के छिन्न-भिन्न, मस्तक से गिरते हैं भू तल।
गज मुक्ताओं से पट जाता, कान्तिमान यह अवनीतल॥
क्रोधित सिंह छलांगें भरकर, पहुंच जाय जब तुंग शिखर।
शांत भाव से वह भी बैठे, जहाँ विराजे श्री जिनवर॥३९॥

प्रलयकाल दहकाता हो जब, धधक रही ज्वाला सब ओर।
प्रबल वायु का वेग गहन हो, अग्नि कर्णों पर चले न जोर॥
दावानल जब नर्तन करती, विश्व विनाश के हो उन्मुख।
नाम जपे जैसे ही प्रभु का, बहती जलधार मिले सब सुख॥४०॥

लाल नेत्र कोयल वत काला, फण फैलाए बड़ा विशाल।
जिसे देख थर-थर सब कांपे, वह भुजंग है अति विकराल॥
नाम नागदम मणि हो जिसके, वह निर्द्वन्द्व विचरता है।
रखकर पग वह क्रुद्ध नाग पर, निशंकित डग भरता है॥४१॥

जिस रणभूमि में गज गर्जे, हय भी भरें जहां हुंकार।
वीर नरेशों की सेना का, कोलाहल हो सीमा पार॥
दूर अकेले बैठे लेता, शक्तिहीन नर प्रभु का नाम।
सूर्य तिमिर जैसे हर लेता, दुश्मन का हो काम तमाम॥४२॥

क्षत-विक्षत कुंजर तन होते, जब भालों से पड़ती मार।
वीर लड़ाकू आतुर होकर, शत्रु पक्ष पर करते वार॥
जो अरण्य में आश्रय लेकर, चरण-कमल बैठे जिनराज।
ऐसे भक्त विजयश्री पाते, मिले उन्हें अनुपम सुख साज॥४३॥

बड़वानल की भीषण लहरें, उठें सिंधु लेकर तूफान।
भंवर चक्र में जैसे फँसते, जलचर जीव मगर बलवान॥
चारों ओर बवंडर भारी, बीचों बीच जलधि जलयान।
विपदाओं से पार उतरते, करें आपका जो नित ध्यान॥४४॥

रोग जलोदर जैसी व्याधि, जिसे असह्य पीड़ा करती।
जीने की जो आश छोड़ते, नहीं त्रास उनकी घटती॥
आकुल-व्याकुल रुग्ण दुखी तव, पदरज शीश लगाते हैं।
स्वस्थ निरोगी सुंदर काया, कामदेव सम पाते हैं॥४५॥

लोह शृंखलाओं से बँधकर, नख-शिख तक जकड़ा हो तन।
रगड़ खाद्य छिल जाती जंघा, अती त्रस्त उत्पीड़न मन॥
ऐसे कारागृह का जीवन, जो भी जीते बंदी जन।
नाम आपका जपते भगवन, तत्क्षण खुल जाते बंधन॥४६॥

निर्मल गुण का करें स्तवन, प्रतिदिन चिंतन और मनन।
भयाक्रांत पीड़ित हों कितने, सभी दुखों का होय हनन॥
हाथी, सिंह और दावानल, सर्प, युद्ध, सागर, प्रहार।
सभी अष्ट भय करें पलायन, गाओ गीत मंगलाचार॥४७॥

बहुरंगी भावों से पुष्पित, उपवन है यह दिव्य ललाम।
भक्तिभाव से गूँथा इसको, 'अखिल' कुसुम चुनकर अभिराम॥
'मानतुंग'की सुंदर रचना, सभी भव्यजन याद करें।
श्रद्धा सहित पठन-पाठन कर, मोक्ष लक्ष्मी तुरत वरें॥४८॥

ऐसै जिनराज ताहि वंदत बनारसी

जामैं लोकालोक के सुभाव प्रतिभासे सब,
जगी, ग्यान सकति विमल जैसी आरसी।
दर्शन उद्योत लीयौ अंतराय अंत कीयौ,
गयौ महा मोह भयौ परम महारसी॥
संन्यासी सहज जोगी जोग सौं उदासी जामैं,
प्रकृति पच्चासी लागि रही जरि छारसी।
सौहै घट-मंदिर मैं चेतन प्रगटरूप,
ऐसे जिनराज ताहि वंदत बनारसी॥२९॥

-कविवर बनारसीदासजी : समयसार नाटक, जीवद्वार